प्रस्तावना -
भाव प्राणी की एक मनोवैज्ञानिक दशा है जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में विचार कर सकते हैं लेकिन विचार शब्द भाव का पूर्णत: पर्याय शब्द नहीं कहा जा सकता ग्रंथराज राजवार्तिक में "भवनं भवतीति भाव:" होना मात्र या जो होता है सो भाव है, ऐसा कहा है।धवला जी ग्रंथ के अनुसार "भवनं भाव:" अथवा "भूतिर्भाव:" इस प्रकार भाव शब्द की व्युत्पत्ति की गई है।

भाव शब्द को एक ही अर्थ में समझना भूल होगी। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न अर्थों में प्रतिपादित किया है जेल से गुड पर्याय के अर्थ के रूप में धवला जी में "भावो खलु परिणामो" अर्थात पदार्थों के परिणामों को भाव कहा है। इसी प्रकार गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी "भाव:चित्परिणाम:" मतलब चेतन के परिणाम को भाव कहते हैं , इस प्रकार वर्णित किया है।

भाव शब्द की व्याख्या कर्मोदय सापेक्ष जीव परिणाम के अर्थ में भी किया गया है।सर्वार्थसिद्धि जी ग्रन्थ में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने प्रथम अध्याय के आठवें सूत्र की टीका के अंतर्गत " भाव: औपशमिकादि लक्षण:" अर्थात भाव से औपशमिकादि भावों को ग्रहण किया गया है। इन्ही भावों की आगे विशेष चर्चा की जाएगी।

इसके अलावा भाव को चित्तविकार के अर्थ में, आत्मा के शुद्ध भाव के अर्थ में तथा नव पदार्थ के अर्थ में आदि अन्य अर्थों में लिया गया है।

पाँच भावों का विवेचन-

आचार्य उमा स्वामी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र जी ग्रंथ के द्वितीय अध्याय के प्रथम सूत्र में स्पष्ट रूप से पांच भावनाओं को निम्न प्रकार से उल्लेखित किया है -
"औपशमिकक्षायिकौभावौमिश्रश्चजीवस्यस्वतत्वमौदयिकपारिणामिकौ च" अर्थात औपशमिक,क्षायिक,क्षायोपशमिक, औदयिक, और पारिणामिक ये जीव के स्वतत्व या भाव हैं।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि भाव और विचार पर्याय नहीं हो सकते प्रथम चार भाव कर्मो दे सापेक्ष निमित्त व 7 माने गए हैं और अंतिम भाग भाव योग्यता की प्रधानता से माना गया है लेकिन विचारों का प्रादुर्भाव भाव के निमित्त से मान सकते हैं जैसे कि सम्यक्त्व एक भाव है तथा सम्यक्त्व भाव के निमित्त से व्यक्ति के अंदर तदनुरूप विचार उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार अलग अलग भावों के निमित्त से प्राणी के अंदर अलग-अलग विचार उत्पन्न होते हैं ऐसा माना जा सकता है।

भावों के भेद - मूल सूत्र कार आचार्य उमा स्वामी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र ग्रंथ में 5 भावों के भेद बताते हुए निम्न सूत्र लिखा है "द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्" अर्थात क्रम से आपशमिक भाव के दो भेद,क्षायिक भाव के नौ भेद,क्षायोपशमिक भाव के 18 भेद , औदायिक भाव के 21 भेद तथा पारिणामिक भाव के तीन भेद कहे गए हैं।

औपशमिक भाव -
उपशम की परिभाषा देते हुए आचार्य पूज्य पाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में
द्वितीय अध्याय के प्रथम सूत्र की टीका में इस प्रकार कहते हैं " आत्मनि कर्मण: स्वशक्ते: कारणवशादनुद्भूतिरुपशम:"
अर्थात आत्मा में कर्मों की शक्ति का किसी कारण से प्रकट ना होना उपशम है

इसी प्रकार राजवार्तिककार ने भी परिणामों की विशुद्धि से कर्मों की शक्ति का अनुद्भूत रहना अर्थात प्रकट ना होना उपशम कहा है।

कहते हैं " उपशमः प्रयोजनमस्येत्यौपशमिकः" अर्थात जिस भाव का प्रयोजन या कारण उपशम हो उसे औपशमिक भाव कहते हैं।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र ग्रंथ के द्वितीय अध्याय के तीसरे सूत्र में "सम्यक्त्वचरित्रे" यह सूत्र देकर औपशमिक भाव के दो भेद बताए हैं।

औपशमिक भाव के दो भेद हैं , औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ।चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं-कषायवेदनीय और अकषाय वेदनीय ,इन में से कषायवेदनीय के अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार भेद और दर्शनमोहनीयके सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन भेद-इन सातके उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व होता है।

यहाँ एक शंका होती है कि अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यके कर्मोके उदयसे प्राप्त कलुषताके रहते हुए इनका उपशम कैसे होता है ? तो इसका समाधान करते हुए आचार्य उमास्वामी जी लिखते हैं कि काललब्धि आदि के निमित्तसे इनका उपशम होता है । अब यहाँ काल लब्धि क्या है तो कहते हैं- कर्मयुक्त कोई भी भव्य आत्मा अर्धपुद्गल परिवर्तन नाम-के कालके शेष रहने पर प्रथम सम्थक्त्व के ग्रहण करनेके योग्य होता है, इससे अधिक कालके शेष रहनेपर नहीं होता यह एक काललब्धि है । दूसरी काललब्धिका सम्बन्ध कर्म स्थितिसे है। उत्कृष्ट स्थिति वाले कर्मों के शेष रहने पर या जघन्य स्थिति वाले कर्मों के शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्व का लाभ नहीं होता ।तो फिर किस अवस्थामें होता है ? तो कहते हैं - जब बँधनेवाले कर्मो की स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम पड़ती है और विशुद्ध परिणामोंके वश से सत्ता में स्थित कर्मो की स्थिति संख्यात हजार सागरोपम कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम प्राप्त होती है तब यह जीव प्रथम सम्यक्त्वके योग्य होता है।

एक काललब्धि भवकी अपेक्षा होती है-जो भव्य है, संज्ञी है, पर्याप्तक है और सर्वविशुद्ध है वह प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है। 'आदि' शब्दसे जातिस्मरण आदिका ग्रहण करना चाहिए ।

यहाँ जो आदि शब्द की व्यख्या आचार्य श्री ने की है वह एक पृथक निमित्त के रूप में की है, इससे क्या यह लेना चाहिए कि जातिस्मरण होने पर काल लब्धि की आवश्यकता नही होगी। लेकिन पंडित फूलचंद्र जी शास्त्री विशेषार्थ में तो स्पष्ट लिख रहे हैं कि -पहली योग्यता अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल की है जब जीव के संसार में रहने का इतना काल शेष रहता है उसे ही सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है । पर इतने कालके शेष रहनेपर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होनी ही चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। इसके पहले सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती इतना सुनिश्चित है ।

समस्त मोहनीय कर्मके उपशमसे औपशमिक चारित्र होता है। इनमेंसे 'सम्यक्त्व' पदको आदिमें रखा है, क्योंकि चारित्र सम्यक्त्व पूर्वक होता है ।

पंडित फूलचंद्र जी शास्त्री विशेषार्थ में लिखते हैं कि उपशम दो प्रकारका है-करणोपशम और अकरणोपशम । कर्मो का अन्तरकरण होकर जो उपशम होता है वह करणोपशम कहलाता है। ऐसा उपशम दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय इन दो का ही होता है, इसलिए उपशम भावके दो ही भेद बतलाये हैं । किन्तु

इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकरण उपशम नहीं होता, इसलिए जहाँ भी इसके उपशमका विधान किया गया है वहाँ इसका विशुद्धि विशेषसे पाया गया अनुदयोपशम

ही लेना चाहिए। औपशमिक सम्यग्दृष्टि के दर्शनमोहनीय का तो अन्तरकरण उपशम होता है व अनंतानुबंधी चतुष्क का अनुदयरूप उपशम-यह उक्त कथनका भाव है ।

क्षायिक भाव - घाति कर्मो के चार भेद हैं-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय । ज्ञानावरण कर्म के अत्यन्त क्षय से क्षायिक केवलज्ञान होता है । इसी प्रकार केवलदर्शन भी होता है।

दानान्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से अनन्त प्राणियों के समुदाय का उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है। समस्त लाभान्तराय कर्मके क्षय से कवलाहार क्रियासे रहित केवलियों के क्षायिक लाभ होता है, जिससे उनके शरीरको बल प्रदान करने में कारणभूत,दूसरे मनुष्योंको असाधारण अर्थात् कभी न प्राप्त होनेवाले, परम शुभ और सूक्ष्म ऐसे अनन्त परमाणु प्रति समय सम्बन्धको प्राप्त होते हैं । समस्त भोगान्तराय कर्मके क्षयसे अतिशयवाले क्षायिक अनन्त भोग का प्रादुर्भाव होता है। जिससे कुसुमवृष्टि आदि अतिशय विशेष होते हैं । समस्त उपभोगान्तरायके नष्ट हो जानेसे अनन्त क्षायिक उपभोग होता है । जिससे सिंहासन, चामर और तीन छत्र आदि विभूतियाँ होती हैं। वीर्यान्तराय कर्मके अत्यन्त क्षयसे क्षायिक अनन्तवीर्य प्रकट होता है ।

पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंके अत्यन्त विनाशसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है । इसी प्रकार क्षायिक चारित्रका स्वरूप समझना चाहिए।

यद्यपि अघाति कर्मो के अभाव से जीव के क्षायिक अगुरुलघु आदि गुण प्रकट होते हैं पर वे अनुजीवी न होनें से उनका
यहाँ ग्रहण नहीं किया है।

यहाँ टीकाकार आचार्य उमास्वामी द्वारा शंका उठाई जाती है कि यदि क्षायिक दान आदि भावोंके निमित्तसे अभय-दान आदि कार्य होते हैं तो सिद्धोंमें भी उनका प्रसंग प्राप्त होता है ? तो इसके समाधान में स्वयं लिखते हैं -यह कोई दोष नहीं हैं, क्योंकि इन अभयदान आदिके होने में शरीर नामकर्म और तीर्थकर नामकर्मके उदयकी अपेक्षा रहती है । परन्तु सिद्धोंके शरीर नामकर्म और तीर्थंकर नामकर्म नहीं होते, अतः उनके अभयदान आदि प्राप्त नहीं होते । शंका- तो सिद्धोंके क्षायिक दान आदि भावोंका सद्भाव कैसे
माना जाय ? समाधान-जिस प्रकार सिद्धोंके केवलज्ञान रूपसे अनन्तवीर्यका सद्भाव माना गया है उसी प्रकार परमानन्द और अव्याबाध रूपसे ही उनका सिद्धोंके सद्भाव है ।

विशेषार्थ- पंडित फूलचंद्र जी शास्त्री ने टीका में जो अभयदान आदि को शरीर नामकर्म और तीर्थकर नाम कर्म की अपेक्षा रखने वाले क्षायिक दान आदि के कार्य बतलाये हैं उनको निमत्त नैमित्तिक संबंध कहा है । बात यह है कि ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि तीर्थंकर के गर्भमें आनेपर छह महीना पहलेसे भक्तिवश देव आकर, जिस नगरी में तीर्थंकर जन्म लेते हैं वहाँ. रत्नवर्षा करते हैं। छप्पन कुमारिकाएँ आकर माता की सेवा करती हैं, गर्भशोधन करती हैं, रक्षा करती हैं। तीर्थंकर के गर्भ में आने पर देव-देवियाँ उत्सव मनाते हैं। जन्म, तप, केवल और निर्वाण के समय भी ऐसा ही करते हैं। केवलज्ञान होनेके बाद समवसरण की रचना करते हैं,
कुसुमवृष्टि करते हैं आदि । इसलिए मूख्यतः ये अभयदानादि देवादिकों की भक्ति और धर्मानुराग के कार्य हैं, शरीर नामकर्म और तीर्थकर नामकर्म की अपेक्षा रखने वाले क्षायिक दान आदिके
नहीं। फिर भी इन अभयदानादिको उपचारसे इनका कार्य कहा है । ऐसा नहीं माननेपर ये तीन दोष आते हैं-1. निर्वाण कल्याणक के समय शरीर नामकर्म और तीर्थंकर नामकर्म नहीं रहता, इसलिए वह नहीं बन सकेगा । 2. गर्भ में आनेके पहले जो रत्नवर्षा आदि कार्य होते हैं उन्हें अकारण मानना पड़ेगा । 3. गर्भ, जन्म और तप कल्याणकके समय न तो क्षायिक दान आदि ही पाये जाते हैं और न तीर्थकर प्रकृति का उदय ही रहता है, इसलिए इन कारणोंके अभाव से इन्हें भी अकारण मानना पड़ेगा । इन सब दोषोंसे बचने का एक ही उपाय है कि पाँच कल्याणकों को और समवसरण आदि बांह्य विभूतिको देवादिक की भक्ति और धर्मानुराग का
कार्य मान लिया जाय ।

क्षयोपशमिक भाव
यहाँ चार अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व
और सम्यग्मिथ्यात्व इन छह प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशमसे देशघाती स्पर्धकवाली सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयमें जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
है। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण इन बारह कषायोंके उदयाभावी क्षय होने से और इन्हीं के सदवस्थारूप उपशम होने से तथा चार संज्वलनों में-से किसी एक देशघाती प्रकृति के उदय होने पर और नौ नोकषायों का यथासम्भव उदय होने पर जो संसार से पूरी
निवृत्तिरूप परिणाम होता है वह क्षायोपशमिक चारित्र है । अनन्तानुवन्धी और अप्रत्याख्यानावरण इन आठ कषायों के उदयाभावी क्षय होनेसे और सदवस्थारूप उपशम होनेसे तथा प्रत्याख्यानावरण कषायके और संज्वलन कषायके देशघाती स्पर्धकों के उदय होने पर तथा नौ नोकषायों-के यथासम्भव उदय होनेपर जो विरताविरतरूप परिणाम होता हैं वह संयमासंयम कहलाता है।

विशेषार्थ- यह तो सुनिश्चित है कि अधिकतर देशघाति कर्म ऐसे होते हैं जिनमें देशधाति और सर्वघाति दोनों प्रकारके स्पर्धक पाये जाते हैं । केवल नौ नोकषाय और सम्यक् प्रकृति ये दस प्रकृतियाँ इसकी अपवाद हैं । इनमें मात्र देशघाति स्पर्धक ही पाये जाते है, अतः नौ नोकषायों के सिवा शेष सब देशघाति कर्मों का क्षयोपशम सम्भव है, क्योंकि पूर्वोक्त लक्षणके अनुसार क्षयोपशम में दोनों प्रकारकी शक्तिवाले कर्म लगते हैं । सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व से

मिलकर क्षायोपशमिक भावको जन्म देनेमें निमित्त होती है, इसलिए क्षायोपशमिक भावके
कुल
अठारह भेद ही घटित होते हैं । उदाहरणार्थ- ज्ञानावरणकी देशघाति प्रकृतियाँ चार हैं, अतः
उत्के क्षयोपसामसे चार ज्ञान प्रकट होते हैं, पर मिथ्यादृष्टिके तीन अज्ञान और सम्यग्दष्टिके चार ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञानके कुल भेद सात होते हैं । इसीसे अठारह क्षायोपशमिक
भाव मे सात ज्ञानों की परिगणना की जाती है । प्रकृतमें दर्शन तीन और लब्धि पाँच क्षायोपशमिक भाव हैं यह स्पष्ट ही है । शेष रहे तीन भाव सो ये वेदक सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम लिए गये हैं । इन सब भावोंमें देशघाति स्पर्धकोंका उदय होता है, इसलिए इन्हें वेदक भाव भी कहते हैं । जितने भी क्षायोपशमिक भाव होते हैं वे देशघाति स्पर्धकोंके उदयसे वेदक भी कहलाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसमें सर्वधाति स्पर्धकों या सर्वघाति प्रकृतियों का वर्तमान समय में अनुदय रहता है, इसलिए इनका उदय कालके एक समय पहले उदयरूप स्पर्धकों या प्रकृतिमें स्तिवुक संक्रमण हो जाता है । प्रकृतमें इसे ही उदयाभावी क्षय कहते हैं । यहाँ स्वरूप से उदय न होना ही क्षय रूप से विवक्षित है। और आगामी कालमें उदयमें आने योग्य इन्हीं सर्वधाति स्पर्धकों व प्रकृतियों का सदवस्थारूप उपशम रहता है। इसका आशय यह है कि वे सत्तामें रहते हैं । उदयावलि से ऊपर के उन निषेकों की उदीरणा नहीं होती। मात्र उदयावलि में स्तवुक संक्रमणके द्वारा इनका उदय कालसे एक समय पहले सजातीय देशधाति प्रकृति या
स्पर्धकरूप से संक्रमण होता रहता है । सर्वधाति अंशका उदय और उदीरणा न होने से जीवका निजभाव प्रकाशमें आता है और देशघाति अंशका उदय रहने से उसमें सदोषता आती है यह
इस भावका तात्पर्य है।

औदायिक भाव - गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड भेदाः

औद यिक भावके इक्कीस भेद हैं-चार गति, चार कषाय, तीन लिग, एक मिथ्यादर्शन,एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्याएँ गति चार प्रकारकी है-नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति । इनमें-से नरक-
गति नामकर्मके उदयसे नारकभाव होता है, इसलिए नरकगति औदयिक है । इसी प्रकार शेष तीन गतियों का भी अर्थ करना चाहिए । कषाय चार प्रकारका है-क्रोध, मान, माया और
लोभ । इनमें-से क्रोधको पैदा करने वाले कर्मके उदयसे क्रोध औदयिक होता है । इसी प्रकार शेष तीन कषायोंको औदयिक जानना चाहिए। लिंग तीन प्रकारका है-स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंकवेद । स्त्रीवेद कर्मके उदयसे स्त्रीवेद औदयिक होता है । इसी प्रकार शेष दो वेद औदयिक हैं। मिथ्यादर्शन एक प्रकारका है । मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे जो तत्त्वोंका अश्रद्धानरूप परिणाम है वह मिथ्यादर्शन है, इसलिए वह औदयिक है । पदार्थोंके नहीं जाननेको अज्ञान कहते हैं ।
ज्ञानावरण कर्म के उदयसे होता है, इसलिए औदयिक है। असंयतभाव चारित्रमोहनीय के सर्वघाती
स्पर्द्धकों के उदयसे होता है, इसलिए औदयिक है । असिद्धभाव कर्मोदय सामान्य की अपेक्षा होता है अतः औदायिक है। लेश्या दो प्रकारकी है -द्रव्यलेश्या और भावलेश्या ।यहाँ जीवके भावोंका अधिकार होनेसे द्रव्यलेश्या नहीं ली गयी है। चूँकि भावलेश्या कषाय के उदयसे अनुरंजित योगकी प्रवृत्ति रूप है, इसलिए वह औदयिक है ऐसा कहा जाता है । वह छह प्रकारकी है- कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद् मलेश्या बौर शुक्ललेश्या

शंका-उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली गुणस्थानमें शुक्ललेश्या
है ऐसा आगम है, परन्तु वहाँ पर कषाय का उदय नहीं है इसलिए औदयिकपना नहीं बन सकता।
समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो योगप्रवृत्ति कषायोंके उदयसे अनुरंजित होती रही
वही यह है इस प्रकार पूर्वभावप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा उपशान्तकषाय आदि गुणस्थानोंमें भी
लेश्याको औदयिक कहा गया है । किन्तु अयोगकेवलीके योगप्रवृत्ति नहीं होती, इसलिए वे लेश्या-रहित हैं ऐसा निश्चय होता है ।

कर्मोको जातियाँ और उनके अवान्तर भेद अनेक हैं, इसलिए उनके उदयसे
होने वाले भाव भो अनेक हैं, पर यहाँ मुख्य औदयिक भाव ही गिनाये गये हैं। ऐसे भाव
इक्कीस होते हैं। प्रथम चार भेद चार गति हैं । ये गति-नामकर्मके उदयसे होते हैं । नामकर्म अघातिकर्म है । गति-नामकर्म उसीका एक भेद है । जो प्रकृतमें अन्य जीवविपाकी अघाति कर्मो-
का उपलक्षण है। पुद्गलविपाकी कर्मो के उदयसे जीवभाव नहीं होते, अतः उनकी यहाँ परिगणना

नहीं की गयी है । घाति कर्मो में क्रोधादि चारों कषायों के उदय से क्रोधादि चार भाव होते हैं।
तीन वेदों के उदय से तीन लिंग होते हैं । तीन वेद उपलक्षण हैं । इनसे हास्य भी ग्रहण होता है । दर्शनमोहनीय के उदयसे मिथ्यादर्शन होता है । दर्शनावरण के उदयसे होनेवाले
अदर्शन भावों का इसी में ग्रहण होता है । ज्ञानावरण के उदयसे अज्ञानभाव होता है, असंयत भाव
चारित्रमोहनोयके उदयका कार्य है और असिद्ध भाव सब कर्मोके उदयका कार्य है । रहीं लेश्याएँ सो ये कषाय और योग इनके मिलनेसे उत्पन्न हुई परिणति विशेष हैं। फिर भी इनमें कर्मोदय-
की मुख्यता होने से इनकी औदयिक भावोंमें परिगणना की गयी है।

पारिणामिक भाव-
पारिणामिक भावके तीन भेद हैं जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व
जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव अन्य द्रव्योंमें नहीं होते इसलिए ये आत्माके जानने चाहिए । ये पारिणामिक क्यों हैं ? इसके समाधान में आचार्य कहते हैं -ये तीनों भाव कर्मके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके बिना होते हैं, इसलिए पारिणामिक हैं। जीवत्वका अर्थ चैतन्य है। जिसके सम्यग्दर्शन आदि भाव प्रगट होने की योग्यता है वह भव्य कहलाता है।अभव्य इसका उल्टा है अर्थात जिसमे सम्यक्त्व की योग्यता न हो । यह तीनों जीव के परिणामिक भाव हैं।